Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

ऋग्वेदकालीन समाजव्यवस्था – एक विहङ्गावलोकन

डॉ.जय उमेशभाई ओझा

आसिस्टन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, चिल्ड्रन्स युनिवर्सिटी, गांधीनगर

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

सारांश :

'विद्' धातु से वेद शब्द निष्पन्न होता है। वेदों में समाज का महत्त्वपूर्ण स्वरूप प्राप्त होता है। व्यक्ति से समाज का निर्माण होता है। किसी भी समाज को उसके धर्म एवं संस्कृति से पहचाना जाता है। विश्व अनेक संस्कृतियों में से भारतीय संस्कृति अभी भी जीवित है, जिसका मुख्य कारण वैदिक संस्कृति है। मिस्र,रोम, यूनान की संस्कृतियाँ नष्ट हो चुकी हैं अथवा उसका मूल स्वरूप भ्रष्ट हो गया है, परन्तु भारतीय संस्कृति एवं समाज अभी तक यथावत है, जिसका मूल कारण वेद है। मानव जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त समाज में ही रहता है। मानव-जीवन के दो पहलू है - वैयक्तिक एवं सामाजिक। समाज का अभ्युदय एवं सुख-शान्ति तब तक सम्भव नहीं है, जब तक उन दोनों पहलुओं में सामञ्जस्य न हो। ऋग्वेदकालीन समाज में दोनों पहलुओं में पूर्ण सामञ्जस्य स्थापित था। तत्कालीन समाज एक सुसंस्कृत समाज था और समाज में एकता का भाव जागृत हो चुका था। इसी क्रम में सर्वप्रथम वैदिक समाज का निरूपण करने का प्रयास किया जा रहा है।

कूञ्जियुक्त शब्द : वेद, समाज, ऋग्वेद, वर्ण, आश्रम

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

विभिन्न संस्कृतियों एवं प्रजातीय तत्वों से वैदिक समाज का निर्माण हुआ है। इस अति प्राचीन एवं विशाल वैदिक समाज में अनेक जातियों के लोग रहते हैं। वैदिक धर्म संस्कृति एवं सभ्यता के भव्य प्रासाद की आधारशिला वेद हैं, जो समस्त मानव की लौकिक एवं पारलौकिक उभयविध उन्नति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। वेदों में समस्त प्रकार की ज्ञानराशि निहित है जो मानव मात्र का कल्याण करती है।

ऋग्वेद में समाज को एक पुरुष के रूप में कल्पित कर उसके विभिन्न अङ्ग-प्रत्यङ्गों का वर्णन किया गया है। ब्राह्मण उस समाजरूपी पुरुष के मुख थे, क्षत्रिय भुजाएँ थीं, वैश्य जधाएँ थीं और शूद्र को पादस्थानीय कल्पित किया गया।

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य: कृत।
ऊरू तदस्य यद्वैश्य: पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ ऋग्वेद १०/९०/१२

यही वर्ण-व्यवस्था का आधार बना। मानव के मन, बुद्धि, आत्मा आदि का सम्यक् अध्ययन कर इसके व्यक्तित्व के विकास के लिए आश्रम व्यवस्था का विकास हुआ। इसी वर्णाश्रम व्यवस्था द्वारा व्यक्ति और समाज का सुन्दर समन्वय स्थापित होता है। सामाजिक विकास में तीन ऋण एवं पुरुषार्थ चतुष्टय का भी महत्त्व था धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति मानव जीवन का ध्येय था। इस प्रकार तत्कालीन सामाजिक जीवन में व्यक्ति और समाज, ऐहिकता और पारलौकिकता, भौतिकता और आध्यात्मिकता, आर्य और अनार्य के मध्य सुन्दर समन्वय स्थापित किया गया था और समाज का समग्र जीवन, परिवार, वर्णाश्रम व्यवस्था तथा पुरुषार्थ-चतुष्टय पर आधारित था।

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

- पारिवारिक जीवन-

पारिवारिक जीवन ही सामाजिक जीवन की आधारशिला है। ऋग्वेद काल में पारिवारिक जीवन संयुक्त परिवार प्रथा पर आधारित था। परिवार में माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पौत्र आदि सम्बन्धी होते थे। परिवार में एक 'गृहपति' होता था, जिसके संरक्षण में परिवार के सभी सदस्य रहते थे और उसके निर्देशानुसार अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करते थे। पिता ही परिवार का 'गृहपति' होता था, जो परिवार का मुखिया माना जाता था। उसका अपनी सन्तान पर पूर्ण अधिकार होता था। परिवार में माता का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। ऋग्वेद में 'जायेदस्तं' शब्दों द्वारा ज्ञात होता है कि पत्नी ही गृहस्वामिनी होती थी और यज्ञानुष्ठान में पति के साथ भाग लेती थी। गृह-व्यवस्था, शिशुपालन आदि का दायित्व पत्नी पर ही होता था। गृह प्रशासन का भार उसी के ऊपर था। वह पति की आज्ञाकारिणी होती थी। घर का सारा काम वही करती थी। नौकरों के साथ अच्छा व्यवहार रखती थी, पति के अविवाहित भाई-बहनों पर अधिकार रखती थी। सास-ससुर के साथ भी उसका अच्छा व्यवहार था। घर की गायों एवं अन्य पशुओं के देख-भाल का काम भी पत्नी पर निर्भर था। गायों के दुहने का कार्य गृहपति की पुत्री करती थी। इसी कारण उसे 'दुहिता' कहते हैं।

पारिवारिक जीवन के विकास के लिए पञ्चमहायज्ञ, संस्कार, यम नियम आदि आवश्यक माने जाते थे। दैनिक कार्यों में पञ्चमहायज्ञ का महत्त्वपूर्ण स्थान था। ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ एवं नृयज्ञ- ये पाँच यज्ञ 'पञ्चयज्ञ' कहे जाते थे। वेदों का स्वाध्याय ब्रह्मयज्ञ कहा जाता है। पितृ को पिण्डदान, तर्पण आदि पितृयज्ञ कहलाता है। सायं प्रातः अग्निहोत्र करना देवयज्ञ है, पञ्चबलि देना भूतयज्ञ और अतिथियों की सेवा अतिथियज्ञ था। ये पञ्चमहायज्ञ मानव जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी थे।

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

ऋग्वेद काल में संस्कार मानव-जीवन के विकास के साधन रहे हैं। संस्कारों के द्वारा ही उनके जीवन को परिष्कृत किया जाता था। विद्याध्ययन के लिए ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश के समय उपनयन संस्कार होता था। वेदाध्ययन के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश के समय विवाह संस्कार होता था । इस महोत्सव पर अभ्यागतों का स्वागत किया जाता था। वर वधू का हस्तग्रहण कर अग्नि की परिक्रमा करता था । उस समय वर-वधू को जीवन में कर्तव्य पालन एवं उत्तरदायित्व-निर्वहन का उपदेश दिया जाता था । पाणिग्रहण संस्कार के पश्चात् वधू उचित वस्त्राभरण धारण कर अपने पति के साथ रथ पर आरूढ़ होती थी। रथ को लाल फूलों से सजाया जाता था और उसमें दो बैल जुते हुए होते थे। उस रथ से वह नये घर में प्रवेश करती थी ।

ऋग्वेदयुगीन गृह मृण्मय होते थे और उसमें चार भाग होते थे--अग्निशाला, हविर्धान, पत्नी-सदन और सदस्। सदस् पुरुषों के बैठने का वह स्थान होता या जहाँ पर मिलने-जुलने वाले लोग आकर मिलते-जुलते थे जिसे दालान कहा जाता था । गृह-रक्षा के लिए 'वाणनोस्पति' देवता की स्तुति की जाती थी। गृहों में बैठने तथा शयन के लिए आसन होते थे। अन्तःपुर में स्त्रियों के लिए साज-सज्जा की व्यवस्था थी । प्रोष्ठ एक प्रकार का काष्ठासन था, जिस पर स्त्रियां बैठती तथा लेटती थीं। इसके अतिरिक्त कलश, द्रोण, स्थाली, तितऊ (चलनी), मूषल आदि गृहोपकरण भी होते थे ।

- खाद्य एवं पेय-

ऋग्वेद काल में आयों का प्रमुख भोजन यव (जौ) की रोटी और दूध-दही था। आर्य यव से परिचित थे । जौ को जांत में पीसा जाता था और चलनी से छानकर उसकी रोटी बनाई जाती थी । जौ का सत्तू भी बनता था जो आर्यों का प्रिय भोजन था । ऋग्वेद में धान्य का भी उल्लेख है किन्तु यहाँ धान्य का

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

अर्थ सामान्य अनाज होता है। (आज के समय मेदोहर के लिए, धूटनो के दर्द होने पर वैद्य जौ की रोटी खाने का आग्रह करते है। गेहूं का संपूर्ण निषेध करवाते है। वैदिक काल में औ से बनी विभिन्न वस्तुओ का ही वर्णन पाया जाता है। जो हमे बताता हैं की हमारे पूर्वज कितने स्वास्थ्य जागरूक थे।)

अपूप, करम्भ, सत्तू, पुरोडाश—ये आर्यों' के स्वादु भोजन थे। दूध प्रधान पेय था। उससे बने विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थ खाने के काम में आते थे। दूध को सोम में मिलाकर भी पिया जाता था। दूध से दधि तैयार किया जाता था, दधि को मथकर मक्खन निकाला जाता था और मक्खन को पिघलाकर घृत तैयार किया जाता था। इस प्रकार दूध और दूध से बने हुए दही, मक्खन, घी आदि का भोजन में विशेष महत्त्व था। ऋग्वेदकालीन आर्यों का प्रमुख पेय सोमरस था। सोम एक प्रकार का पौधा होता था जिसे कूटकर उसका रस निचोड़ा जाता था। फिर उसमें दूध, दही या पानी मिलाकर पिया जाता था। सोम में स्फूर्ति की शक्ति थी, उसे पीकर लोग मस्त हो जाते थे और शरीर में स्फूर्ति आ जाती थी।

- वेशभूषा

ऋग्वेदीय युग में दो प्रकार के वस्त्र पहने जाते थे एक अधोवस्त्र और दूसरा उत्तरीय। ये वस्त्र ऊन के बनते थे। वस्त्र जरी के काम से सुसज्जित किये जाते थे। ऋग्वेद में इस प्रकार के वस्त्र को 'पेशस्' कहा गया है। पेशसु वस्त्र बुनने का कार्य स्त्रियां करती थीं। ऋग्वेद में 'निष्क' शब्द आया है। 'निष्क' गले में पहनने का स्वर्णाभूषण (हार) था। दूसरा आभूषण 'रुक्म' था जो डोरे में छाती तक लटकाकर पहिना जाता था, इसके लिए ऋग्वेद में 'रुक्मवक्षस्' शब्द आया है। इसके अतिरिक्त स्रज् (मोतियों की माला), कंकण (चूड़ियां), खादि (नूपुर) और कर्मशोभन (कर्णाभूषण) आदि आभूषण धारण किये जाते थे। केशपाश में तेल लगाया जाता था और उसे कंधी से संवारा जाता था। अथर्ववेद में तो सो दांतों वाली

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

कंधी का उल्लेख है। स्त्रियां केश को विभक्त कर वेणी बांधा करती थीं। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की वेश-भूषा ऋग्वेदीय युग में प्रचलित थी।

- वर्णाश्रम व्यवस्था –

आश्रम व्यवस्था ऋग्वेदकालीन समाज का मुख्य आधार था। वेदों में मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानी गयी है और आयु के चार विभाग कर चार आश्रमों में विभाजित कर दिया गया है। ये चार आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास थे। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के पचीस वर्ष ब्रह्मचर्य आश्रम में बिताने पड़ते थे । वहाँ वह वेदाध्ययन करता था। वेदाध्ययन के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। गृहस्थाश्रम में मनुष्य को, ऋणत्रय से मुक्ति एवं पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि के लिए पञ्चमहायज्ञ करना पड़ता था। गृहस्थाश्रम के पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश होता था। इसमें मनुष्य को दारैषणा, वितैषणा, लोकैषणा आदि का परित्याग करना पड़ता था। जीवन की अन्तिम अवस्था में संन्यास आश्रम में प्रवेश होता था। इसमें समस्त सांसारिक बन्धनों को त्याग करना पड़ता था, उनका मुख्य कर्त्तव्य समाजसेवा तथा परोपकार था। इस प्रकार वैदिकयुग में वर्णाश्रम व्यवस्था का विकास हो चुका था।

- स्त्रीशिक्षा-

ऋग्वेदकाल में स्त्रीशिक्षा का प्रचार था। उस समय स्त्रियाँ वेदाध्ययन करती थीं और मन्त्रों की रचयिता भी थीं। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों के दर्शनकर्त्री स्त्रियाँ थीं। आत्रेयी(८,९९१,१-७) घोषा नाम की ब्रह्मवादिनी ने दशममण्डल के ३९वें एवं ४०वें सूक्तों की रचना की है। इससे विदित होता है कि उन दिनों स्त्रियाँ शिक्षिता होती थीं। इसके अतिरिक्त लोपामुद्रा, अपाला, लोमशा, विश्वावारा, सूर्या आदि ऋषिकाओं ने एक-एक सूक्तों की रचनाएँ की है। बृहस्पति की पत्नी जुहू, विवस्वान् की पुत्री यमी,

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

श्रद्धा, सर्पराज्ञी आदि ऋषिकाओं ने भी एक-एक सूक्तों की रचनाएँ की हैं। इससे स्पष्ट है कि उस समय स्त्रियां मन्त्रों की रचना करने वाली थी, स्त्रियाँ केवल मन्त्रों की रचयिता ही नहीं थीं, बल्कि कविताएँ भी करती थीं, गानविद्या में कुशल होती थी, नृत्यकला भी जानती थीं । इससे स्पष्ट है कि उस समय स्त्रियों को विविध कलाओं की शिक्षा दी जाती थी ।

- नारी की दशा –

ऋग्वेदकाल में नारी को गृहिणी का पद प्राप्त था । पत्नी गृहिणी के पद से ही पति की आवश्यकताओं को पूरी करती थी । ऋग्वेद में सूर्या के विवाह के अवसर पर नारी के गृहिणी पद का सुन्दर वर्णन किया गया है। वहाँ पर नवोढ़ा वधू से कहा गया हैं कि 'गृह में प्रवेश करो और गृहिणी बनकर सब पर शासन करो।"

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्वां भव ।

ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥ १०/८/४६

हे वधू ! तुम श्वसुर, सास, ननद एवं देवरों की साम्राज्ञी बनो-सबके उपर प्रभुत्व करो । गृहिणी होने के कारण ही वह पति के साथ समस्त धार्मिक कार्यों का सम्पादन करती थी । गृहिणी पद के अतिरिक्त परमात्माने नारी को 'मातृपद' भी दिया है । माता का पद पारिवारिक जीवन में अमृत के समान है । ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर नारी के मातृत्वपद का मनोरम वर्णन है । ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि 'पतिगृह में रहकर हम दोनों एक साथ ही आजीवन सुखोपभोग करते हुए पुत्र-पौत्रादि के साथ खेलें।"

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।

क्रीडन्तौ पुत्रर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

हे दंपति ! गृहस्थधर्म का पालन करते हुए इस घर में रहो, पृथक् न हो, पुत्र-पौत्रादि के साथ खेलते हुए प्रसन्नतापूर्वक पूर्ण आयु प्राप्त करो ।

इस प्रकार ऋग्वेदीय युग में पति-पत्नी को सौमनस्य एवं उनका साहचर्य नारी को गौरव प्रदान करता है और उस युग में नारी को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था ।

उपसंहार :

समानी व आकूति: समाना हृदयानि व: ।

समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति ॥ ऋग्वेद

हे सुख, समृद्धि और उन्नति के इच्छुक मनुष्यों, तुम्हारा नारा एक समान होना चाहिए, तुम्हारे हृदय के अन्तर्भाव समान होने चाहिए । तुम्हारा चिंतन और विचार समान हों, तुम्हारा लक्ष्य समान हो, तुम्हारे सभी कार्य, व्यवहार तथा चिन्तन आदि इस प्रकार के होने चाहिए । ऐसा आचरण करने से तुम्हारा कल्याण होगा ।

इस प्रकार के वैश्विक शांतिभाव की कामना करते हुए एस मन्त्र को पढने से हमे ज्ञात होता है की, ऋग्वेद कालीन हमारी उद्दात्त सामाजिक दृष्टि को उजागर करती है । समानता के स्तर पर सभी को प्रतिष्ठित करने के अभिप्राय से समाज एवं व्यक्ति के सर्वविध विकास की कामना है । समाज का ठोस गठन शक्ति, जन्म या सम्पत्ति से पूर्ण नहीं होता, यह तो उसके सदस्यों के व्यक्तित्व एवं श्रेष्ठता पर निर्भर है ।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेता: सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।

नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाग्घो भवति केवलादी ॥ ऋ. १०/११७/६

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

- अनुदार या स्वार्थी मनवाले मनुष्य व्यर्थ ही अन्न-धन प्राप्त करते है। यह सत्य है कि उसका धन उसके लिए घातक-मृत्यु समान ही है। वह विद्वानो को प्रसन्न नहीं करता है, सज्जन या मित्रो को पुष्ट न करता है। वह एकाकी खाता हुआ-भोगी केवल पाप खाता है।

वर्तमान स्थितियों में इस विश्व में सभी देश एवं कही जानेवाली बडी विश्वसत्तायें केवल अपने स्वार्थ के लिए ही कार्यरत है। ऐसी विषम स्थिति में पूरे विश्व को सही मार्गदर्शन करने का कार्य केवल भारत ही कर सकता है, यह सत्य हमे हमारे वैदिक समाज के गठन को जानकर मिलता है। तो फिर आईए, हमारी जडो की और हमारे वेदो की और पुन: प्रस्थान करें।

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

संदर्भग्रंथ :

१) ऋग्वेद संहिता, सायणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक : पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

२) ऋग्वेद भाष्य, अनुवादक : दयालमुनि आर्य, प्रकाशक : वानप्रस्थ साधक आश्रम, आर्यवन-रोजड

३) वैदिक ज्ञान विज्ञान कोश, संपादक : डो. मनोदत्त पाठक, प्रकाशक : राअपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

४) वैदिक साहित्य का इतिहास, प्रो.पारसनाथ द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

५) वैदिक साहित्य अने संस्कृति, डो गौतम पटेल, युनिवर्सिटी ग्रन्थनिर्माण बोर्ड, अमदावाद